॥ अस्मद्गुरुभ्यो नमः रामानुजाय नमः ॥



सियाराम ही उपाय, सियाराम ही उपेय

अर्थपञ्चकम्

(हिन्दी भाषा टीका सहित)



सियाराम ही उपाय, सियाराम ही उपेय

अर्थपञ्चक

१. **संसारिणश्चेतनस्य तत्वज्ञानोत्पत्योज्जीवनसमये अर्थपञ्चकज्ञानोत्पत्तिरावश्यकी।**

अनादिकाल से इस जन्ममरणरूप संसार में पड़े हुए जीव को तत्वज्ञान से उज्जीवन होने के समय में पाँच पदार्थों का ज्ञान अवश्य होना चाहिये।। १।।

२. **अर्थपञ्चकज्ञानन्नाम स्वस्वरूपपरस्वरूपपुरुषार्थस्वरूपो-पायस्वरूपविरोधिस्वरूपाणां याथात्म्यज्ञानम्।**

1) मेरा कैसा स्वरूप है। 2) मुझको संसार से छुड़ाने वाले परमात्मा का कैसा स्वरूप है। 3) मुझको किस चीज की चाहना करनी चाहिये। 4) इस संसार से छूट जाने का क्या उपाय है। 5) मुझे इस संसार से कौन नहीं छूटने देता। इन पाँच पदार्थों का जान लेना ही अर्थपञ्चक ज्ञान कहलाता है।। २।।

३. **एतेष्वेकैको विषयः पंचधा भवति।**

इन पाँच पदार्थों में एक-एक पदार्थ पाँच प्रकार का होता है।। ३।।

४. **स्वस्वरूपमित्यात्मस्वरूपमुच्यते।**

स्वस्वरूप से आत्मा का स्वरूप कहा जाता है।। ४।।

५. **तच्चाऽऽत्मस्वरूपन्नित्यमुक्तबद्धकेवलमुमुक्षुभेदात् पंचविधम्।**

1) नित्य 2) मुक्त 3) बद्ध 4) केवल 5) मुमुक्षु; इन भेदों से वह आत्मा का स्वरूप पाँच प्रकार का है।। ५।।

६. परस्वरूपं परव्यूहविभवान्तर्य्याम्यर्चावतारभेदात् पंचविधम्।

1) पर 2) व्यूह 3) विभव 4) अन्तर्यामी 5) अर्चावतार इन भेदों से परमात्मा का स्वरूप पाँच प्रकार का है।। ६।।

७. पुरुषेण अर्थनीयः पुरुषार्थः सच धर्मार्थकामात्मानुभव-भगवदनुभवभेदात्पंचविधः।

पुरुष जिसकी चाहना करें उसको पुरुषार्थ कहते हैं। वह पुरुषार्थ 1) धर्म 2) अर्थ 3) काम 4) आत्मानुभव 5) भगवान का अनुभव इन भेदों से पाँच प्रकार का है।। ७।।

८. उपायंच कर्मज्ञानभक्तिप्रपत्याचार्याभिमानभेदात्पंचविधः।

उपाय पाँच प्रकार का होता है 1) कर्म (अर्थात् दान यज्ञादिकों का करना) 2) ज्ञान 3) भक्ति 4) प्रपत्ति (प्रभु को अपनी रक्षा करने वाला मान कर और सब उपायों का भरोसा छोड़ देना) 5) आचार्याभिमान-प्रभु की शरणागति के उपदेश करने वाले आचार्य ही मेरा उद्धार करेंगे, ऐसा विश्वास करना।। ८।।

९. विरोधी च स्वस्वरूपविरोधी परस्वरूप विरोधी पुरुषार्थ विरोधी उपायविरोधी प्राप्तिविरोधी चेति पंचविधः।

विरोधी पाँच प्रकार का होता है, 1) स्वरूपविरोधी-जो जीव को अपने स्वरूप को नहीं जानने देता, 2) परस्वरूप विरोधी-जो परमात्मा का ज्ञान नहीं होने देता, 3) पुरुषार्थ विरोधी-हम जिसको चाहते हैं उसको जो हमें नहीं मिलने देता है, 4) उपायविरोधी- हम जो कुछ अपने प्यारे पदार्थ के मिलने का

उपाय करते हैं उसको पूरा नहीं होने देता है, 5) प्राप्तिविरोधी जो हमारे प्रिय पदार्थ को हमें नहीं मिलने देता ॥ ९॥

१०. तत्र नित्याः सदा संसाररूपाविद्यारहिताः भगवदानुकूल्यैक-भोगाः श्रीवैकुण्ठनाथस्य पट्टबन्धनस्योचिता मन्त्रिणः ईश्वरनियोगात्सृष्टिस्थितिसंहारान् कर्त्तुं शक्ताः परव्यूहादिसर्वावस्था स्वप्यनुसृत्य कैङ्कर्य्यकरणशीलाः विष्वक्सेनप्रभृतयोऽमराः।

नित्य, मुक्त, बद्ध, केवल, मुमुक्षु–इन भेदों से पाँच प्रकार के जीव होते हैं। उनमें नित्य जीव वे कहाते हैं, जिनको संसार का दुःख कभी नहीं भोगना पड़ा हो और जिन्होंने भगवान के अनुकूल बना रहना ही अपना सुख समझा हो और जो श्रीवैकुण्ठनाथ के पट्टबन्धन के लायक और मन्त्री तथा ईश्वर की आज्ञा से जगत् के सृष्टि, पालन, संहार करने में समर्थ हों और भगवान की पर, व्यूह आदि जितनी अवस्था हैं उनमें प्राप्त होकर अपने स्वामी की सेवा करने का जिनका स्वभाव है; जैसे श्रीविष्वक्सेनजी, गरुड़जी, शेषजी इत्यादिक॥ १०॥

११. मुक्ता नाम भगवत्प्रसादेन निवृत्तप्रकृतिसम्बन्ध प्रयुक्तक्लेशमलाःभगवत्स्वरूपरूपगुणविभवानन्नु-भूयाऽनुभवजनितप्रीतेरुत्कूलत्वात्। वाचा यथा पर्य्याप्तिं स्तुत्वा तृप्तिम्विना वैकुण्ठमहानगरे वर्तमानाः सन्तोषानन्दप्रयुक्ता मुनयः।

मुक्त जीव वे कहाते हैं जो भगवान की कृपा से प्रकृति के सम्बन्ध से पैदा हुए अनेक प्रकार के दुःख जिनके दूर हो गये

और भगवान के स्वरूप, रूप, गुण, माधुर्य्य, ऐश्वर्य का अनुभव करने से प्रीति का प्रवाह उत्पन्न हो जाता है, उससे अपनी वाणी से प्रभु की स्तुति करते रहते प्रभु के गुणगान करने से कभी तृप्ति नहीं होती, भगवद्‌गुण का अनुभव करने से ही उनको परमानन्द और सन्तोष हो जाता है और सदा श्रीवैकुण्ठलोक में निवास करते हैं ॥ ११ ॥

१२. बद्धा नाम पांचभौतिको ऽनित्यःसुखदुःखानुभवपरिकर आत्मविश्लेषेदर्शनस्पर्शनायोग्यो ऽशुद्ध्यास्पदोऽज्ञानान्यथाज्ञानविपरीतज्ञानजनकोदेह एवाऽऽत्मेति शब्दादिविषयानुभवजनितस्वदेहपोषणमेव पुरुषार्थ इति शब्दादिविषयलाभौपयिकतया वर्णाश्रम-धर्मान् विनाश्याऽसेव्यसेवां कृत्वा भूतहिंसाङ्कृत्वा परदारपरद्रव्यापहारं कृत्वा संसारवर्द्धका भगवद्विमुखा श्चेतनाः।

यह देह पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पाँच भूतों से बना है, अनित्य है और सुख दुःख के भोगने का साधन है। जब इसमें से आत्मा निकल जाती है, तब यह देखने के और छूने के योग्य नहीं रहता है, अशुद्धि का स्थान है, और अज्ञान, अन्यथाज्ञान, विपरीत ज्ञान को पैदा करता है। ऐसे देह को ही जो आत्मा मानते हैं और शब्दादिक विषय के अनुभव से अपने देह का पालन करना ही जिनने पुरुषार्थ समझ रक्खा है और विषयों के मिलने के वास्ते अपने वर्ण आश्रम के धर्मों का नाश करके जो छूने के लायक भी नहीं है उनकी

सेवा करके, अनेक प्राणियों की हिंसा करके, पराई स्त्री, पराये धन को जो ग्रहण करते हैं, ऐसे जीव अपने जन्म मरण रूप संसार को आप ही बढ़ाते रहते हैं। इसी से ये बद्ध कहाते हैं।। १२।।

१३. केवलो नाम एकाकी अत्यन्तक्षुत्पिपासाभ्यां पीडितो भक्ष्याभक्ष्यविवेकम् कर्त्तु मशक्तः स्वदेहं स्वयमेव भक्षयित्वा प्रसन्नो भवति तथा संसारदावाग्निना तप्तस्सन् संसारदुःखनिवृत्यर्थं शास्त्रजन्यज्ञानेन प्रकृत्यात्मविवेकम् कृत्वा प्रकृते दुःखाश्रयत्वहेयपदार्थसमूहत्वरूपाकारत्व मात्मनः प्रकृतेः परत्वस्वयंप्रकाशत्वस्वतः सुखित्वनि–त्यत्वा प्राकृतत्वस्वरूपाकारञ्चाऽनुसन्धाय पूर्वं स्वेनानुभूतदुःखाधिक्येनैतदल्परस आसक्तो ज्ञानानन्दमयपरमात्म विवेकम् कर्त्तु मशक्तः एतदात्मप्राप्तिसाधनभूतज्ञानयोगनिष्ठो योगफल मात्मानुभवमात्रमेव पुरुषार्थत्वेनाऽनुभूय पश्चात् संसारसम्बन्ध भगवत्प्राप्तिरहितः यावदात्मभाव्यशरीरी संचरन् कश्चित्।

केवल नाम उस जीव का है- जैसे कोई अकेला रहने वाला बहुत भूख प्यास से जब पीड़ित हो जाता है, तब उसको यह ज्ञान नहीं रहता कि कौन वस्तु मेरे खाने के योग्य है और कौन न खाने के योग्य, तदनन्तर वह अपने देह को आपही खाकर प्रसन्न होता हो, वैसे ही यह जीव भी संसार रूप दावानल से तपाया हुआ संसार के दुःख की निवृत्ति के वास्ते

शास्त्र से उत्पन्न हुए ज्ञान से अपने आत्मा को प्रकृति से अलग जान लेता है। प्रकृति सब दुखों का आधार है और त्याग करने लायक जितने पदार्थ हैं वे सब प्रकृति के ही स्वरूप हैं और आत्मा प्रकृति से पर है, स्वयं प्रकाश है, अपने ही से सुखी है, नित्य है, अप्राकृत स्वरूप है, ऐसा अपने को जान कर, संसार में पहले इसने बहुत दुःख भोगे थे इससे यह जीव थोड़े ही सुख में आसक्त हो जाता है। आनन्द के निधि परमात्मा के अनुभव करने में असमर्थ हो जाता है और यह जान लेता है कि मुझ को ज्ञान से ही आत्मसुख मिला है और मेरे योग का फल यही है जो मैं अपनी आत्मा को सुख रूप जानता हूँ, बस इस से अधिक और कुछ सुख नहीं है। तब संसार से यह छूट जाता है केवल अपने आत्मा के अनुभव में लगा रहता है। इसको आनन्दनिधि भगवत्स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती। सदा शरीर से रहित यह अधिकारी रहता है। ऐसे जीव को कैवल्यनिष्ठ कहते हैं।। १३।।

१४. **मोक्षेच्छूनाम्मुमुक्षव इति नाम। एतेच मुमुक्षवः उपासकाः प्रपन्नाश्च द्विधा।**

जो जीव यह चाहते हैं कि हमारा मोक्ष हो जाय- वे जीव मुमुक्षु कहाते हैं। उनके दो भेद हैं- एक तो उपासक होते हैं और दूसरे प्रपन्न होते हैं।। १४।।

१५. **ईश्वरविषये परत्वं नाम परमपदेऽवाक्यनादर इति वर्तमानः आदिज्योतिरूपः परवासुदेवः।**

1) पर 2) व्यूह 3) विभव 4) अन्तर्यामी 5) अर्चा, ईश्वर के ये पाँच प्रकार पहले कह आये हैं। उनमें पर स्वरूप उसको कहते हैं, जो परमपद वैकुण्ठ में सदा वर्तमान है, और जो आदि ज्योति रूप पर वासुदेव है, जिसको वेद 'अवाकी अनादर' इस प्रकार से कहता है।। १५।।

१६. व्यूहो नाम सृष्टिस्थितिसंहारकर्तार: संकर्षण-प्रद्युम्नानिरुद्धा:।

व्यूह नाम ईश्वर के उस रूप का है, जो जगत् की सृष्टि, पालन, संहार के करने वाले संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध नाम से विख्यात है।। १६।।

१७. विभवो नाम रामकृष्णाद्यवतारा:।

श्रीराम, श्रीकृष्ण इत्यादिक जो अवतार हैं, ये विभव कहाते हैं।। १७।।

१८. अन्तर्यामित्व मुभयविधम् 'दासस्यान्तर्वर्त्तमान' इति 'ममप्राण' इति चोक्तप्रकारेण 'आत्मनोऽन्त: कमले प्रविष्ट' इति 'कमलवासिनी स्वयमप्यागत्य प्रविश्य' इति 'अन्त: प्रविश्य स्वस्मिन्नादरवर्द्धकसुन्दर' इति 'विचारवतां विचारं सर्वं सह स्थित्वा जानासी' ति चोक्तप्रकारेण लक्ष्मीसहितो विलक्षणविग्रहयुक्तो हृदयकमले सकलप्रवृत्तिनिवृत्ती: सदाऽवलोकयन् वर्तमान:।

अन्तर्यामी स्वरूप दो प्रकार है 1) जो दासों के हृदय कमल में श्रीलक्ष्मी सहित विचित्र विग्रह सहित वर्तमान रहता है, और 2) प्रवृत्ति निवृत्ति रूप कर्मों को सदा देखता रहता है। प्रभु के

इसी अन्तर्यामी स्वरूप का पूर्वाचार्यों ने अपनी मधुर श्रीसूक्तियों में इस प्रकार वर्णन किया है, "हे नाथ! आप अपने दास के भीतर विराजते हैं। हे मेरे प्राण! आत्मा के अन्तःकरण कमल में प्रवेश कर गये हो, कमलवासिनी श्रीलक्ष्मीजी ने भी आप आकर प्रवेश किया है, हमारे भीतर प्रवेश करके अपने में आदर के बढ़ाने वाले हे सुन्दर! विचार वालों के समस्त विचारों के साथ रह कर आप जानते हैं", इत्यादि वाक्यों से।। १८।।

१९. अर्चावतारो नाम 'दासानां यदभिमतं तद्रूपवान् तदभिमतं यन्नाम तन्नामवान्' इत्युक्तप्रकारेण स्वार्थ-रूपनामरहितः आश्रिताभिमतरूपस्तत्कृतनामा सर्वज्ञोऽप्यज्ञ इव सर्वशक्ति रप्यशक्त इवावाऽऽप्तसमस्तकामोपि सापेक्ष इव रक्षकोऽपि रक्ष्य इव स्वस्वामिभावं विपरीतं कृत्वा नेत्रविषयतया सर्वसुलभः आलयेषु गृहेषु च वर्तमानः।

पाँचवा अर्चावतार ईश्वर का स्वरूप है। नाम, रूप से अपना प्रयोजन ईश्वर को कुछ नहीं है, किन्तु भक्तजन जैसे स्वरूप का ध्यान करते हैं, और जिस नाम में भक्तों का प्रेम है, वैसा ही स्वरूप और नाम धारण कर के भगवान अर्चावतार में विराजते हैं। अर्चावतार में ईश्वर सर्वज्ञ है, तब भी अज्ञ की तरह, और सर्व-शक्ति वाले होकर भी असमर्थ से, अवाप्तसमस्तकाम हो कर भी अपेक्षा करते हुये से, रक्षक होकर भी रक्षा करने के योग्य मालूम होते हैं। यद्यपि आप सबके स्वामी हैं, परन्तु अर्चावतार में तो अपने भक्तों के

आधीन अपने स्वरूप को कर दिया है, इसी से आप सबके नेत्रों को सुलभ हो गये हैं। किसी भक्त के प्रेम से आप विचित्र मन्दिर में विराजते हैं, और किसी भक्त के प्रेम से एक छोटे से घर में विराजते हैं, इसी से प्रभु के प्रेमियों ने कहा है कि, ''हे नाथ! आपके दासों को जैसे स्वरूप में अनुराग है और जिस नाम में प्रीति है, आप उसी स्वरूप को और नाम को धारण कर लेते हैं।'' पुरुष जिस वस्तु की इच्छा करे वह पुरुषार्थ कहाता है, सो 1) धर्म 2) अर्थ 3) काम 4) आत्मानुभव 5) भगवदनुभव ये पांच प्रकार का पहले कह चुके हैं अब एक एक का लक्षण कहते हैं।। १९।।

२०. पुरुषार्थेषु धर्मो नाम प्राणिरक्षणौपयिकतया क्रियमाणो वृत्तिविशेषः।

पुरुषार्थों में धर्म वह कहाता है, जिसके करने से जीव की रक्षा हो सके, जैसे यज्ञ, दानादिक।। २०।।

२१. अर्थो नाम वर्णाश्रमानुरूपं धनधान्ये सङ्गृह्य देवताविषयेषु पित्र्येषु च कर्मसु प्राणिविषयेषु चोत्कृष्टदेशकालपात्राणि ज्ञात्वा धर्मबुद्ध्या व्ययकरणम्।

यहाँ अर्थ उसको जानना चाहिये जो कि वर्ण आश्रम योग्य धन और अन्नादिक संग्रह करके देवताओं के कार्य में और पितरों के कार्य में, और जीवों के कार्य में अच्छे देश, समय, पात्र जान कर धर्म की बुद्धि से खर्च किया जाय।। २१।।

२२. कामो नाम ऐहलौकिकः पारलौकिकश्च द्विविधः।

काम दो प्रकार का है, एक ऐहिलौकिक-जो इसी लोक में

भोगा जाता है; दूसरा पारलौकिक–जो परलोक में भोगा जाता है।। २२।।

२३. तत्र ऐहलौकिकः पितृमातृरत्नधनधान्यान्न पानीयदारपुत्रमित्रपशुगृहक्षेत्रचन्दनकुसुमताम्बूल वस्त्रादिपदार्थेषु शब्दादिविषयानुभवप्रयुक्तसुखविशेषः।

इस लोक में पिता, माता, रत्न, धनधान्य, अन्न, जल, स्त्री, मित्र, पशु, गृह, भूमि, चन्दन, पुष्प, ताम्बूल वस्त्रादि पदार्थों में अनुभव करने से जो सुख होता है, और शब्दादि विषयों के भोगने से जो सुख होता है, वो सब ऐहिलौकिक है।। २३।।

२४. पारलौकिको नाम एतद्विलक्षणेषु तेजोरूपेषु स्वर्गादिलोकेषु गत्वा क्षुत्पिपासा शोकमोहजरामरणादिकम्बिनाऽर्जितपुण्यानुरूप ममृतपानं कृत्वाऽप्सरोभिस्सह शब्दादिविषयानुभवकरणम्।

जो इस लोक से विलक्षण तेजोमय स्वर्गादि लोकों में जाकर भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा (बूढ़ापन), मरण इनसे रहित होकर, पहले किये हुए कर्म के योग्य अमृतपान करके, अप्सराओं के साथ शब्दादि विषयों को अनुभव करना, इसको पारलौकिक कर्म कहते हैं।। २४।।

२५. केवलो नाम दुःखनिवृत्तिमात्ररूपं केवलात्मानुभवं च मोक्ष इति वदन्ति।

केवल पुरुषार्थ उसको कहते हैं, जिसमें दुःख की निवृत्ति मात्र हो जाय और केवल अपने आत्मा का ही अनुभव हो। इसको भी कोई मोक्ष कहते हैं।। २५।।

२६. अथ परमपुरुषार्थलक्षणमोक्षो नाम प्रारब्धकर्मवि-शेषाणामवश्यानुभाव्यानाम्पुण्यपापानान्नाशेऽस्ति जायते परिणमते विवर्द्धतेऽपक्षीयते विनश्यती त्युक्तप्रकारेण षड्भावविकारास्पदन्तापत्रयाश्रयं भगवत्स्वरूपं चावृत्य विपरीतज्ञानोत्पादकं संसारवर्द्धकं स्थूलशरीरमुपेक्षया त्यक्त्वा सुषुम्नानाड्या शिरःकपालम्भित्वा निर्गत्य सूक्ष्मशरीरेणाऽऽकाशं गन्तंमार्गम्प्राप्योष्णमण्डलान्तर्गत्वा सूक्ष्मशरीरं वासनारेणुं च विरजास्नानेन दूरीकृत्य सकलतापनिवर्तकामानवकरस्पर्शं प्राप्य शुद्धसत्वात्मकं पञ्चोपनिषन्मयं ज्ञानानन्दजनकं भगवदनुभवैकपरतेजोमयमप्राकृतविग्रहं लब्ध्वा किरीटयुक्तेष्वमरेषु प्रत्युद्गच्छत्सु श्रीमहामणिमण्डपम्प्राप्य लक्ष्मीसहितं भूमिनीलानायकन्देवसमूहेषु सेवमानेषु ज्योतिः प्रवाहे आविर्भवद्रूपं श्रीवैकुण्ठनाथन्नित्य मनुभूय नित्यकैङ्कर्य्यस्वभावविशिष्टतया स्थितिः।

अस्ति, जायते, परिणमते, विवर्द्धते, अपक्षीयते, विनश्यति ये छः भाव विकार इस शरीर में रहते हैं, और अधिभूत जल, वायु, तेज, भूमि इत्यादिक से होने वाला दुःख, अध्यात्म मन से होने वाला दुःख; अधिदेव देवता द्वारा होने वाला दुःख, ये तीन प्रकार के ताप भी इसी स्थूल शरीर में होते हैं, और यही शरीर भगवान के स्वरूप के जानने में आवरण हो जाता है और विपरीत ज्ञान को पैदा करता है, और जन्म मरण रूप

संसार को बढ़ाता है। जब पहिले किये हुए पुण्य, पाप जो कि अवश्य भोगने पड़ते हैं, इनका नाश हो जाता है, तब इस स्थूल शरीर में जीव को उपेक्षा हो जाती है। अर्थात्, जिसको बड़े यत्न से पालन करता है, उसी शरीर को छोड़ कर, सुषुम्ना नाड़ी से निकल कर, कपाल को भेद कर, सूक्ष्मशरीर सहित आकाश में जाने के लिये इसको मार्ग मिल जाता है; फिर सूर्य के उष्ण किरण मण्डल में जाकर प्रकृति मण्डल से बाहर श्रीविरजानदी आती है। उसमें स्नान करके, अपने सूक्ष्म शरीर और अनादि काल की वासनारूप रेणु को छोड़ देता है; फिर तापों के दूर करने वाले अमानव पुरुष के हाथ का इसको स्पर्श होता है, उससे शुद्ध सत्वात्मक पञ्च उपनिषन्मय ज्ञान और आनन्द का पैदा करने वाला केवल भगवान का ही जिससे अनुभव होता है, ऐसा तेजोमय अप्राकृत दिव्य शरीर इसको मिलता है, फिर दिव्य किरीट कुण्डलादि भूषणों को धारण किये हुए, श्रीवैकुण्ठ निवासी इस जीव को सामने लेने आते हैं, तब यह श्रीमहामणि वाले मण्डप में पहुँच कर, श्रीवैकुण्ठ निवासी देवगण जिनकी सेवा कर रहे हैं, ऐसे श्रीलक्ष्मीजी सहित भूदेवी, नीलादेवी के नायक श्रीवैकुण्ठनाथ, जिनके तेज के प्रवाह में रूप प्रकट हो रहा है, उनका अनुभव करके सदा सेवा करता रहता है। इसी का नाम मोक्ष है। यही परम पुरुषार्थ है।। २६।।

२७. उपायेषु कर्मयोगो नाम यज्ञदानतपोध्यानसन्ध्यावन्दन पञ्चमहायज्ञाद्यग्निहोत्रतीर्थयात्रापुण्यक्षेत्रवासकृच्छ्र-

चान्द्रायणपुण्यनदीस्नानव्रतचातुर्मास्यफलमूलाशनशास्त्राभ्यासभगवत्समाराधनजपतर्पणकर्मानुष्ठान प्रयुक्तकायशोषणेन पापनाशोत्पत्तौ तत्तदिन्द्रियद्वारा प्रसरतो धर्मभूतज्ञानस्य शब्दादीनामविषयत्वेन विषयापेक्षायां यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिरूपाष्टाङ्गयोगक्रमेण योगाभ्यासकालपर्यन्तं ज्ञानास्यात्मानो विषयताकरणम्।

पाँच प्रकार के उपाय पहले कह चुके हैं, उनमें कर्मयोग का स्वरूप कहते हैं यज्ञ, दान, तप, ध्यान, सन्ध्यावन्दन, पञ्च महायज्ञादिक, अग्निहोत्र, तीर्थयात्रा, पुण्यक्षेत्र वास, कृच्छ्र चान्द्रायण, पुण्यनदी स्नान, व्रत चातुर्मास्य, फलमूलों का भोजन, शास्त्र का अभ्यास, भगवान का पूजन, जपतर्पणादि कर्मों के अनुष्ठान से शरीर को सुखा कर पापों का नाश करना, इन्द्रियों के द्वारा फलने वाले ज्ञान को शब्दादि विषयों से रोक लेना; यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, इस आठ प्रकार के योग से जब तक योग का अभ्यास करें, तब तक ज्ञान से अपने आत्मा को ही अनुभव करना; यह कर्म योग कहलाता है।। २७।।

२८. अयं च ज्ञानयोगस्य सहकारी ऐश्वर्यस्य प्रधानसाधनं च भवेत्।

यह कर्मयोग ज्ञानयोग की सिद्धि भी करता है, और ऐश्वर्य का मुख्य कारण होता है।। २८।।

२९. ज्ञानयोगो नाम, एवं योगजन्यज्ञानस्य हृदयम-

ण्डलादित्यमण्डलप्रभृतिस्थलविशेषेशु च वर्तमानं सर्वेश्वरं विषयं कृत्वा तं विषयं शंखचक्रगदाधरं पीताम्बरकिरीटनूपुरादिदिव्यभूषणालंकृतं लक्ष्मीसहितं चानुभूय योगाभ्यासक्रमेणानुभवकालम्बर्द्धयित्वा-ऽनवरतभावनारूपत्वापादनम्।

अष्टांग योग से उत्पन्न हुए ज्ञान से शंख, चक्र, गदा के धारण करने वाले पीताम्बर किरीट नूपुरादि दिव्यभूषणों से सुशोभित लक्ष्मीजी सहित श्रीमन्नारायण को अनुभव करके धीरे धीरे योगाभ्यास से, अनुभव के समय को बढ़ा कर, सदा श्रीमन्नारायण के स्वरूप की भावना करते रहना; यह ज्ञान योग कहाता है।। २९।।

३०. अयं च भक्तियोगस्य सहकारी कैवल्यस्य प्रधानसा-धनं भवेत्।

यह ज्ञानयोग भक्तियोग को भी सिद्ध करता है, और कैवल्य का मुख्य साधन होता है।। ३०।।

३१. भक्तियोगोनाम तैलधारावदविच्छिन्नस्मृतिसन्तानरूपानु-भवस्य प्रीतिरूपापन्नत्वापादनं तत्स्वरूपे विचारिते प्रारब्धकर्मनिवृत्यौपयिकतया साधनसाध्येऽनुष्ठाय तत्सङ्कोचविकाशोपयोगिपरिणामकरणम्।

जैसे तैल की धारा पात्र में गिरती हो, उस समय उसके बीच में कोई छिद्र नहीं दीखता है, इसी तरह श्री गोविन्द को सदा याद करते रहना, और स्मरण में प्रारब्ध कर्म की निवृत्ति के वास्ते, साधन को अनुष्ठान करके, प्रारब्ध कर्म से भगवान के

स्मरण करने में किसी प्रकार से सङ्कोच हो गया हो, तो उसको दूर करके श्रीमन्नारायण का सदा ध्यान करना; ये भक्तियोग कहाता है।। ३१।।

३२. अथ प्रपत्युपायो नाम एवं कर्मज्ञान सहकारिणि भक्तियोगेऽशक्तानामप्राप्तानां सुकरः शीघ्रफलप्रदः उपायस्य सकृतत्वात्, उपायानुष्ठानसमनन्तरं जायमानभगवद्विषयानुभवानां प्राप्यकोटिघटितत्वात्, सुशकः स्वरूपानुरूपश्च भवति। इयं चार्त्तरूपाप्रपत्तिर्दृप्तरूपाप्रपत्तिश्चेतिद्विधा।

जो पुरुष अपने वर्ण आश्रम के कर्म को करता हो, और ज्ञानयोग का भी अधिकारी हो, वो ही पुरुष भक्तियोग को कर सकता है। जिनके पास कर्म और ज्ञान ये दोनों ही सामग्री नहीं हैं वे भक्तियोग के करने में असमर्थ हैं और भगवत्स्वरूप को प्राप्त नहीं हुए हैं, उनके वास्ते (प्रपत्ति) शरणागति रूप उपाय करना सहज है। इसको कुछ और सामग्री नहीं चाहिये और (प्रपत्ति) शरणागति नाम उपाय जल्दी फल को देता है। यह उपाय एक ही बार किया जाता है, इस उपाय के करने वाला भगवान के स्वरूप का ही प्रेम रखना, भगवान के स्वरूप के विचार करने के समय स्मरण करता है। वह उसको उपाय नहीं समझता है, किन्तु जैसे भगवान को सबसे अधिक अपने प्यारे समझता है, उसी तरह प्रभु के गुणों को और नाम तथा स्मरण को भी अपने प्यारे जानता है। इसी से शरणागति नाम उपाय करना सहज है, और इस जीव के

लायक है। प्रपत्ति (शरणागति) दो प्रकार की है-एक आर्तप्रपत्ति दूसरी दृप्तप्रपत्ति।। ३२।।

३३. तत्रार्तरूपप्रपत्ति र्नाम निर्हेतुकभगवत्प्रसादेन हेतुना शास्त्राभ्यासेन सदाचार्योपदेशक्रमेण यथा ज्ञानोत्पत्यनन्तरं भगवदनुभवस्य विपरीतदेहसम्बन्धस्य देशसम्बन्धस्य दैशिकसहवासस्य च दुःसहत्वात्, भगवदनुभवस्यैकान्तं विलक्षणं देहदेशदैशिकाँश्च प्राप्तुमाशाधिक्येन श्रीवेङ्कटनायकस्य गर्भजन्मजराधिव्याधिमरणादिनिवर्तकत्वात्, श्रीवेङ्कटनायक! गत्यन्तरशून्यो दासोऽहं, वेङ्कटाचलवासिने नमः, इति पूर्णप्रपत्तिं कृत्वा 'बहु दर्शयित्वा नाशयसि' 'प्रथमाहंगन्तुन्नानुजानामि' एतत्तीरमारुह्य श्रान्तोस्मि प्राप्तुम् 'कृपां कुरु लक्ष्म्या शापितोऽसि' 'अथाऽहंगन्तुन्ना नुजानामी' ति प्रतिरुध्यप्राप्तिः। भगवान की निर्हेतुक कृपा (बिना किसी कारण की दया), इस जीव पर जब होती है, तब शास्त्र के अभ्यास और श्रेष्ठ आचार्य के उपदेश से इस को ज्ञान होता है; फिर यह जीव गोविन्द के गुणों पर मोहित होकर यह चाहने लगता है, कि मेरा यह अधम शरीर कब छूटेगा, और इस देश को छोड़ कर कब उस देश में पहुँचूँगा जहाँ पर मेरे प्राणनाथ श्रीश्यामसुन्दर के दिव्य गुणों को सदा याद करने के वास्ते शरीर मिलेगा, और मेरे नाथ के गुणों को गान करने वाले भक्तों की मुझे प्राप्ति होगी, ''हे नाथ! आप के गुणों का अनुभव, याद करने में विघ्न करने वाला यह शरीर और यह देश और यहां के रहने वाले विषयभोगी मनुष्यों का सङ्ग अब

मुझे अच्छा नहीं लगता," इस प्रकार अत्यन्त दुखी होकर मानो श्रीहरि से झगड़ा कर रहा है, इसको आर्तप्रपत्ति कहते हैं। जैसा किसी हरिदास ने कहा है, "श्रीवेङ्कटनायक मेरे गर्भ, जन्म, जरा (आधि), मन का दुख (व्याधि), अनेक रोग और मरणादिकों को दूर करेंगे। मैं श्रीवेङ्कटनायक का दास हूँ और सब उपायों से रहित हूँ। श्रीवेङ्कटाचलवासी ही मेरा उपाय है।" इस प्रकार प्रभु की पूर्ण (पूरी) शरणागति करके फिर संसार के पदार्थों को देख कर कहा कि, "हे नाथ! मुझको संसार के बहुत पदार्थ दिखला कर नाश करते हो क्या! मैं इस संसार समुद्र के तीर पर आकर थक गया, अब आप अपने पास प्राप्त होने को मेरे ऊपर कृपा कीजिये। मैं आपको लक्ष्मीजी की शपथ (कसम) दिलाता हूँ, अब मैं चलना नहीं जानता किस मार्ग से आप के पास पहुँचूँगा"।। ३३।।

३४. दृप्तप्रपत्ति र्नाम शरीरान्तरप्राप्तौ स्वर्गनरकानुभवेषु च विरक्तभीत्युत्पत्या तन्निवृत्यर्थं भगवत्प्राप्त्यर्थं च सदाचार्योपदेशक्रमेणोपायस्वीकारङ्कृत्वा विपरीतप्रवृत्ति निवृत: वेदविहितवर्णाश्रमानुष्ठानं भगवत्कैङ्कर्य्यञ्च वाचिकमानसिककायिकै: कैङ्कर्य यथाबलमनुष्ठायेश्वरय शेषित्वनियन्तृत्वस्वामित्व शरीरित्वव्यापकत्वधारकत्व रक्षकत्व भोक्तृत्वसर्वज्ञत्वसर्वशक्तित्वसर्वसम्पूर्णत्वा-वाप्तसमस्तकामत्वाकारान्स्वस्यतच्छेषत्वनियाम्यत्वस्व-त्वशरीरत्वव्याप्यत्वधार्य्यत्वरक्ष्यत्वभोग्यत्वाज्ञत्वा-

शक्तत्वापूर्णत्वाकिञ्चन्यत्वरूपाकाराँश्चाऽनुसन्धाय 'निर्वतय दुःखम्मा वा निवर्तकान्तरसद्भाववान्नास्मी' तिप्रकारेणोपायविषयसर्वभराँश्च तद्विषये न्यस्य निर्भयतया वर्तत इति।।

जिस समय इस जीव को ऐसा ज्ञान हो जाता है, कि मुझको दूसरा शरीर नहीं धारण करना पड़े, तब मनुष्य शरीर को छोड़ कर देवता का शरीर धारण करके स्वर्ग का सुख भोगना भी इसको अच्छा नहीं लगता है क्योंकि गीता में कहा है—

ते तम्भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोकं विशन्ति।

अर्थ— इस मनुष्य लोक में विषय सुख भोगने की इच्छा से दान, यज्ञादि कर्मों के करने वाले जीव स्वर्गलोक में जाकर सुख भोगते हैं। जब सुख भोगने से उनके पुण्य का नाश हो जाता है, तब इसी मनुष्य लोक में वे फिर आ जाते हैं, और फिर जन्म लेना, मरना इत्यादि घोर दुःखों को भोगते हैं। इससे स्वर्गादि लोक के सुख भोगने में वैराग्य हो जाता है और बुरे कर्म करने से नरक में जाकर अनेक दुःख भोगने पड़ेंगे, ऐसा समझ कर इस जीव को भय होता है। तब भय दूर करने को और श्रीनारायण की प्राप्ति के वास्ते श्रेष्ठ आचार्य (गुरु) ने इसको जो उपाय बताया है, और जिन कर्मों से श्रीगोविन्द को याद करना भूल जाय ऐसे बुरे कर्म करना छोड़ देता है और वेद के कहे हुए जो कर्म हैं उनको अपनी जाति और आश्रम, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ, सन्यासी—इन में जिस किसी आश्रम में हो, उसी के लायक करता हुआ भगवान के कैङ्कर्य्य को

(सेवा को) करता है। अर्थात् वाणी से नारायण के दिव्य नामों को लेता है, मन से प्रभु के गुण और परम मनोहर छवि को याद करता है, शरीर से श्रीश्यामसुन्दर की श्रीमूर्ति की अनेक तरह से सेवा करता है कि नारायण ही शेषी है, मुझको अपने नियमों में चलाते हैं, और वे व्यापक हैं, मुझको धारण करने वाले हैं, भोक्ता (भोगने वाले) हैं, सब के जानने वाले हैं। उनमें सब तरह की शक्ति है, सब तरह से पूर्ण हैं, उनको सब तरह के पदार्थ प्राप्त हैं। इस तरह से प्रभु के गुणों को याद करता है, और अपने को ऐसा समझता है कि मैं प्रभु का शेष (अङ्ग) हूँ, उनके नियमों में चलता हूँ, उनका पदार्थ हूँ, उनके शरीर की तरह उनके आधीन हूँ, उनके स्वरूप के एक देश में रहता हूँ उनके धारण करने योग्य और रक्षा करने लायक हूँ, उनके भोगने लायक हूँ और मैं कुछ नहीं जानता हूँ। किसी काम के करने को समर्थ (लायक) नहीं हूँ, सब प्रकार के गुणों से रहित हूँ। मेरे पास ऐसी कोई चीज नहीं कि जिससे मैं श्रीगोविन्द की सेवा कर सकूँ। इस तरह से यह जीव अपने को समझ कर अपने परम प्रिय भक्तवत्सल श्रीश्यामसुन्दर से यह प्रार्थना करता है कि, ''हे नाथ! आप मेरे दुःख को दूर करें वा न करें परन्तु मैं और किसी दूसरे से अपने दुःख के दूर करने की प्रार्थना नहीं करूँगा।'' इस तरह सब उपायों का भरोसा छोड़ कर श्रीमन्नारायण को ही अपना रक्षक समझ कर उनके विसे ही अपनी रक्षा का भार रख कर यह निर्भय होकर रहता है, इसी को दृप्त प्रपन्न कहते हैं, और इस जीव की की हुई शरणागति को दृप्तप्रपत्ति कहते हैं।। ३४।।

३५. आचार्याभिमानो नाम एतेष्वेकस्मिन्नपि शक्तिरहितं कञ्चन तस्य च्युति मेतस्य प्राप्तावीश्वरस्य जायमानां प्रीतिं चाऽनुसंधाय स्तनन्धयप्रजाया व्याधौ सति तं स्वदोषत्वेनाऽनुसंधाय स्वयमौषधसेवाकर्त्री मातेव एतन्निमित्तं स्वयमेवोपायानुष्ठानं कृत्वा रक्षितुं शक्तस्य परमदयालोर्महाभागवतस्याऽभिमानेऽन्तर्भूय उचितोपायं ज्ञापयतिचेत् 'तम्पश्याम' इत्युक्तप्रकारेण सकल प्रवृत्तिनिवृत्तीनान्तादधीन्यापादनं। भगवत:स्वयं प्राप्यत्वेऽपि सकलदेवतान्तर्यामित्वेन प्राप्यत्ववत् अस्याऽऽचार्याभिमानस्य स्वातन्त्र्येणोपायत्वेऽप्ययं सर्वेषामुपायानां सहकारी स्वतन्त्रश्च भवति।

संसार के बन्धन से छूटने के वास्ते शास्त्र में ईश्वर की भक्ति करना उपाय कहा है, परन्तु भक्ति करने का अधिकारी वो ही है जो अपनी जाति और आश्रम के लायक सब कर्म करता हो। जो जीव विद्या और कर्म करने की शक्ति से हीन हो, वह प्रभु की शरणागति करने से भगवान को प्राप्त हो सकता है। शरणागति दो प्रकार की होती है- एक आर्त की दूसरी दृप्त की- इनका स्वरूप कह चुके हैं। जो जीव भक्ति और शरणागति इन दोनों के करने में असमर्थ हो, ऐसे जीव को श्रेष्ठ आचार्य के सम्बन्ध से भगवान की प्राप्ति हो सकती है। आचार्य की परम दया उस जीव पर अवश्य हो जाती है, जो अपने सरल (सीधे) स्वभाव से आचार्य की सेवा करता है, और कोई उपाय अपने उद्धार करने का मन में नहीं समझता

है, आचार्य (गुरु) का सबके ऊपर दया करने का स्वभाव ही है; जब सब प्रकार से हीन शिष्य को देखते हैं और यह जानते हैं कि इस जीव को हमारे बिना और कौन सुधारेगा, इसके नाश होने में हमारी हानि होगी, और इसकी प्राप्ति होने से ईश्वर की प्रीति होगी, तब आचार्य ऐसे जीव का उद्धार होने का आप उपाय करते हैं। जैसे दूध पीने वाले बालक के शरीर में रोग हो जाता है तो माता यह जानती है, कि इस बालक के शरीर में मेरे ही दोष से रोग पैदा हुआ है, तब माता बालक के रोग दूर करने को आप ही औषध खाती है। इसी प्रकार, अपने आप ही उपाय बन दीन जीव की रक्षा करने में समर्थ परम दयालु और परमभागवत आचार्य में ऐसा प्रेम करना, कि जिससे आचार्य यह समझ लें कि यह जीव हमारा ही है। ऐसे आचार्य के सदा आधीन रहना ही आचार्याभिमान कहाता है। जैसे भगवान स्वयं प्राप्य (आप ही फल रूप) हैं, तब भी सब देवताओं के अन्तर्यामी (भीतर विराजते हैं), ऐसा जान कर देवताओं के द्वारा भी भगवान ही का पूजन करना है, इसी तरह आचार्य की उपासना करना ईश्वर की प्राप्ति में स्वतन्त्र (खास) भी उपाय हो जाता है। और जो भगवान की प्राप्ति (मिलने) के भक्ति और प्रपत्ति (शरणागति) रूप उपाय है उनका सहायक हो जाता है।। ३५।।

३६. विरोधिवर्गे स्वरूपविरोधी नाम देहात्माभिमान मन्यशेषत्वं स्वस्वातन्त्र्यं च।

पाँच प्रकार के विरोधी होते हैं, यह पहिले कह चुके हैं। उनमें स्वरूप विरोधी उसको कहते हैं, कि जैसे देह को ही आत्मा समझ लेना, अथवा भगवान को छोड़ कर किसी और का ही दास बन जाना, या यह समझ लेना मैं स्वतन्त्र हूँ।। ३६।।

३७. परत्वविरोधीनाम देवतान्तरेषु परत्वप्रतिपत्तिः समत्वप्रतिपत्तिः क्षुद्रदेवताविषयेषु शक्तियोगप्रतिपत्तिः अवतारेषुमनुष्यत्वप्रतिपत्तिः अर्चावतारेष्व शक्तिप्रतिपत्तिश्च।

यह जीव देह स्वरूप नहीं है देह में रहता है, और किसी का दास नहीं है परमात्मा का दास है, स्वतन्त्र नहीं है सदा परमात्मा के आधीन है; इसको और तरह से समझना स्वरूप का विरोधी होता है, फिर उसको परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। श्रीलक्ष्मीकान्त (नारायण) को छोड़ कर किसी और देवता को परतत्व (ईश्वर) मानता है, अथवा और देवताओं के बराबर ही नारायण को समझता है और क्षुद्र (छोटे) देवताओं में अपने उद्धार करने की शक्ति समझता है, और श्रीरामचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र अवतार को जो मनुष्य मानता है और भगवान के अर्चावतार में (प्रतिष्ठा की हुई भगवान की मूर्ति में) कुछ शक्ति नहीं है ऐसा मानता है, इसको परत्वविरोधी कहते हैं; ऐसे मानने वाले अज्ञानी ज़ीव को ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती।। ३७।।

३८. पुरुषार्थविरोधी नाम पुरुषार्थान्तरेष्विच्छास्वाभिमतभगवत्कैंकर्य्येष्वनिच्छा च।

जब यह जीव श्रीगेविन्द की चरण सेवा को छोड़ कर और पदार्थ की चाहना करने लगता है, अथवा अपने परमप्रिय

भगवान की सेवा में इच्छा नहीं करता है, तब इसको भगवान की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी को पुरुषार्थविरोधी कहते हैं।। ३८।।

३९. उपायविरोधी नाम उपायान्तरवैलक्षण्यप्रतिपत्तिः उपायलाघवं उपेयगौरवं विरोधिवाहुल्यं च।

शास्त्र में कहे हुए भक्ति, शरणागति रूप उपाय को त्याग कर और उपाय को अच्छा मानना, अथवा भगवान बड़े योगिराजों को कठिन तप करने से भी नहीं मिलते हैं, तो भक्ति और शरणागति रूप छोटे उपाय से कैसे मिल जायेंगे, भगवान की प्राप्ति होने में अनेक तरह के विघ्न आ जाते हैं, ऐसा विचार करना, इसको उपाय विरोधी कहते हैं। ऐसे विचार करने वाले जीव को भी ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती; क्योंकि 'मद्भक्ता यान्ति मामपि' मेरे भक्त मुझको प्राप्त होते हैं। 'मामेकं शरणं ब्रज' एक मुझको ही शरण प्राप्त हो, अर्थात् मुझको ही अपनी रक्षा करनेवाला जाने इत्यादिक माता पिता से सहस्त्र गुण (हजार गुना) हित करने वाले श्रीगोविन्द के कहे हुये उपायों में से उस जीव का विश्वास दूर हो गया।। ३९।।

४० अनुतापशून्यगुरुस्थिरभगवदपचार भागवतापचारासह्यापचारप्रभृतयस्सर्वे विरोधिन इत्युच्यन्ते।

बहुत काल तक बना रहे, ऐसा भगवान का भारी अपराध करना और ऐसे अपराध के करने पर भी अपने मन में उसका अनुताप (पछताव) नहीं करना, कि हाय मैंने बुरा किया और जो अपराध भगवान भी नहीं सह सकें ऐसा भगवान के भक्तों का अपराध करना, ये सब विरोधी कहाते हैं। ये जीव को प्रभु चरणों की प्राप्ति नहीं होने देते हैं।। ४०।।

४१. अन्नदोषः ज्ञानविरोधी।

अन्न का दोष ज्ञान का विरोधी है, जैसे मसूर अन्न शास्त्र में अपवित्र कहा है, और चमार आदि से लेकर जो हीन जाति के मनुष्य हैं उनका और जो अत्यन्त पाप करने वाले मनुष्य हैं, उनका अन्न भी नहीं खाना चाहिये। उनके अन्न खाने से और शास्त्र से मना किया गया अन्न खाने से भी ज्ञान का नाश हो जाता है।। ४१।।

४२. सहवासदोषो भोगविरोधी।

और पाप करनेवाले मनुष्यों का सङ्ग भी नहीं करना चाहिये। पाप करने वाले मनुष्य के संग से ज्ञान का नाश होता है।। ४२।।

४३. एवमर्थपञ्चकज्ञानोत्पत्या मुमुक्षोः संसारे वर्तमानस्य चेतनस्य मोक्षसिद्धिपर्य्यन्तं संसारासक्रान्त्यर्थं कालक्षेपकरणप्रकारः वर्णाश्रमानुरूपमशनाच्छादने सम्पाद्य ''यदन्नः पुरुषो भवति तदन्ना स्तस्य देवता'' इत्युक्तप्रकारेण सकलपदार्थानपि भगवद्विषये निवेद्य यथाबलं भागवतकिञ्चित्कारङ्कृत्वा देहधारणमात्रं प्रसादप्रतिपत्या उज्जीवेत्। कथंचित्तत्वज्ञानोत्पादकस्याऽऽचार्यस्य सन्निधौ किञ्चित्कारेण तदभिमतो वर्तेत। ईश्वरसन्निधौ स्वस्य नीचत्वमनुसन्दधीत।

इस प्रकार मोक्ष के चाहने वाला मनुष्य जब तक इस का मोक्ष न हो, तब तक कहे हुए पाँच पदार्थों का विचार करता हुआ ही अपने समय को व्यतीत करें (बितावें) जिससे फिर यह जन्म मरणादि अनेक दुःखो से भरे हुए संसार में न पड़ जाय। मोक्ष के चाहने वाला जीव अपने वर्ण और आश्रम के योग्य वस्त्र पैदा करें, और जो कुछ अन्न वस्त्र मिले, उसको भगवान के अर्पण करके जैसी शक्ति होय

वैसा भगवान के भक्तों को देकर अपने देह का धारण हो सके, उस प्रकार प्रसाद समझ कर उस अन्न को ग्रहण करें, भगवान के भक्त को जैसा अन्न मिले, प्रभु उसी अन्न को अङ्गीकार कर लेते हैं। तत्वज्ञान को पैदा करने वाले आचार्य के पास कुछ सेवा करके, मोक्ष चाहने वाले मनुष्य को रहना चाहिये कि जिससे आचार्य की उसके ऊपर कृपा बनी रहे ॥ ४३॥

४४. आचार्य्यसन्निधौ स्वस्याज्ञानमनुसन्दधीत।

जब आचार्य (गुरु) के पास बसै तब शिष्य अपने मन में ऐसा समझता रहे कि मैं अज्ञानी हूँ आचार्य ही मेरा उद्धार करेंगे ॥ ४४॥

४५. भागवतसन्निधौ स्वस्य पारतन्त्र्यमनुसंदधीत।

और जब भागवतों (भक्तों) के पास जाय, तब ऐसा समझै कि ये भागवत (विष्णु भक्त) मेरे स्वामी हैं, मैं इनके आधीन हूँ ॥ ४५॥

४६. संसारिणामग्रे स्वव्यावृत्तिमनुसन्दधीत।

और जब मुमुक्षु (मोक्ष चाहने वाला) संसारी मनुष्यों के पास जाय, तब अपने मन में ऐसा समझें कि ये संसारी मनुष्य हैं, वो ही काम करते हैं, जिससे फिर इस संसार में जन्म लेंगे और मरेंगे, इनको विषय भोग और स्त्री पुत्रादिक प्यारे हैं, जिनके मोह से अनेक प्रकार के दुःख इनको भोगने पड़ेंगे और मुझको श्रीश्यामसुन्दर के परम मनोहर चरण प्यारे हैं, जिनके ध्यान से मैं इस संसार समुद्र से पार हो जाऊँगा। इससे इन संसारी मनुष्यों के संग से मुझको सदा डरना चाहिये, इनका संग करना मुझको बहुत बुरा है। यदि मुमुक्षु (मोक्ष चाहने वाला) जीव इस प्रकार

से नहीं समझैगा तो इसकी भी वो ही दशा होगी, जैसी शौभरि ऋषि की हुई थी। शौभरि ऋषि श्रीयमुनाजी में स्नान करके सन्ध्या कर रहे थे, वहाँ पर मछली अपने बच्चों के साथ खेल रही थी। उन बच्चों को देख कर शौभरि ने भी राजा मान्धाता की पचास कन्याओं से विवाह किया, फिर वह भी योगी थे इससे उनके पाँच हजार सन्तान हुई। अन्त में उनको बहुत पछताना पड़ा। ।। ४६।।

४७. प्राप्यत्वरा प्रापकेऽध्यवसायः विरोधिनि भयम् इतरविषयेष्वरुचिः स्वरूपज्ञानम् स्वरक्षणेऽशक्तिश्च यथानुवर्तेरन् तथा ज्ञानानुष्ठानाभ्यां युक्तो वर्तेत। एवम्भूतः ईश्वरस्य महिषीभ्यो नित्यमुक्तेभ्यश्चाऽत्यन्ताभिमतो भवेत्।

मोक्ष चाहने वाले मनुष्य को चाहिये, कि अपने मन में भगवान के प्राप्त होने की त्वरा (जल्दी) करता रहे, और भगवान की प्राप्ति के उपाय की सदा चिंता करता रहे और भगवान की प्राप्ति के विरोधी से डरता रहे, और नारायण के सिवाय और किसी पदार्थ में प्रीति न करे, अपने देह में भी प्रीति न करे, और अपने स्वरूप को विचारता रहे, और यह समझता रहे, कि मैं अपनी रक्षा नहीं कर सकता मोक्ष चाहने वाले मनुष्य को इस प्रकार के ज्ञान और अनुष्ठान करने चाहिये, कि जिस से ऊपर कहे हुए गुण इसमें बने रहें। इस प्रकार का जीव ईश्वर को नित्य पार्षद और मुक्त हुए जीव तथा श्रीलक्ष्मीजी से भी अधिक प्रिय हो जाता है।। ४७।।

।। इत्यर्थपञ्चकम् भाषानुवादसहितम् समाप्तम्।।